साथ-साथ सीखना हर बच्चे को आत्मविश्वास देता है

पाठशाला के हर अंक के लिए हम शिक्षा के किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर संवाद आयोजित करते हैं और बातचीत के विवरण को पत्रिका में प्रकाशित करते हैं। इस अंक के लिए संवाद श्रृंखला की सातवीं परिचर्चा पीयर लर्निंग यानी साथ-साथ सीखना विषय पर आधारित थी, जिसमें 'साथ-साथ सीखने' के बहुआयामी पहलुओं पर विस्तार से बातचीत की गई। यह परिचर्चा वेबिनार के रूप में आयोजित की गई, जिसका ब्योरा पाठकों के लिए प्रस्तुत है। सं.

रजनी : नमस्ते। *पाठशाला* द्वारा आयोजित इस संवाद में आप सभी का स्वागत है। आज की बातचीत का विषय है 'पीयर लर्निंग' जिसे हम 'साथ-साथ सीखना' भी कहते हैं। अकसर बात की जाती है कि बच्चे एक दूसरे से सीखते हैं और यह कि बच्चे अपने दोस्तों की बातों को जल्दी समझते और मान भी जाते हैं, उनके साथ ग़लतियों के बारे में बातचीत भी करना चाहते हैं। इस तरह उनके सीखने की प्रक्रिया सहज भी हो जाती है।

आज के संवाद में हम बात करेंगे कि बच्चों के एक दूसरे से सीखने के क्या-क्या उदाहरण हम स्कूल और कक्षा में देखते हैं। कक्षाओं में मॉनीटर भी होते हैं। क्या मॉनीटर भी अपने साथियों को सीखने में मदद कर सकते हैं? क्या इसे भी हम सहयोगी सीखना कहेंगे? बच्चे समूह में काम करते हुए सीखें, यह भी बात होती रहती है। क्या समूह में सीखना भी साथ-साथ सीखने की अवधारणा पर ही आधारित है? और यह भी महत्त्वपूर्ण है कि समूह हम किन आधारों पर बनाएँ? एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि सहयोगी सीखने में क्या सिर्फ़ बच्चों को, उनके मित्रों को ही एक दूसरे का सहयोगी मानें, या शिक्षक भी विद्यार्थियों के सहयोगी बनकर उनके सीखने की प्रक्रिया में मदद कर सकते हैं? अगर शिक्षकों को विद्यार्थियों के दोस्त मानते हैं तो इन शिक्षकों को, उनकी भूमिका को कैसे देखें? शिक्षक एवं बच्चे मिलकर साथ-साथ सीखें, इसकी क्या शर्तें हो सकती हैं? इन कुछ मुद्दों पर इस संवाद में बातचीत करेंगे।

इस संवाद में हमारे साथ अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जयपुर से अमित शर्मा और राजकीय प्राथमिक शाला बमबाला, सांगानेर, जयपुर से पूनम भाटियाजी हैं। राजकीय प्राथमिक शाला जामनाड, बेमेतरा से सावित्रीजी हैं और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बेमेतरा से हमारे साथ श्वेता भी हैं। एकलव्य, भोपाल से युगल किशोरजी और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, अल्मोड़ा से लोकेश हैं।

पूनमजी, आप अपनी बात रखें।

पूनम भाटिया : मेरा मानना है कि हम पैदाइश के साथ ही सीखना शुरू कर देते हैं। जिस तरह से हम बड़ों को साथी की आवश्यकता होती है उसी तरह प्रत्येक बच्चे को भी साथी की ज़रूरत होती है। सीखने के नियमों में एक नियम यह भी है कि हम एक दूसरे के साथ में सीखते हैं। जब भी हम आपस में बातचीत या चर्चा करते

हैं, मित्रता करते हैं, उठते-बैठते हैं, साथ-साथ काम करते हैं तब चाहते या न चाहते हुए भी बहुत सारे विचार एक दूसरे को सिखा देते हैं।

समूह किस आधार पर बनने चाहिए, समूह शिक्षण स्थाई या अस्थाई किस रूप में होना चाहिए, साथ ही समूह शिक्षण कितना लाभकारी हो पाता है, इसपर अब मैं बात रखूँगी। कोविड महामारी ने यह गहनता से सिखा दिया है कि ऑनलाइन शिक्षा परिपूर्ण नहीं है। बच्चे कक्षा में जो सीखते हैं वही पूर्ण शिक्षण है। विद्यालयी शिक्षा में एक साथ रहना, कक्षा में साथ-साथ बैठना, प्रार्थना करना, खेलना, पुस्तकालय में एक साथ बैठना, पौधारोपण, मॉनीटरिंग, साथ में खाना खाना, भोजन की व्यवस्था को सँभालना और ऐसी कई गतिविधियों में सम्मिलित होना महत्त्वपूर्ण है।

समूह स्थाई हो या अस्थाई, यह इसपर निर्भर करता है कि समूह किस कार्य के लिए बन रहे हैं? जैसे– कुछ सीखने के लिए या किसी विषय पर बोलने अथवा किसी कार्य को करने के लिए, आदि। जब छोटी अवधि के लिए कोई कार्य कर रहे हैं, यानी किसी एक लर्निंग आउटकम को लेकर तो एक लर्निंग आउटकम पर काम होने के बाद समूह बदला जा सकता है। अतः इस अनुरूप जिस समूह का निर्माण होगा वह स्थाई नहीं होगा। स्तर के अनुरूप भी समूह का निर्माण कर सकते हैं। यहाँ यह रेखांकित कर दूँ कि किसी भी बच्चे को बहुत अच्छा या कमतर नहीं आँक सकते, क्योंकि किसी विषय या अवधारणा पर बच्चों की समझ एक दूसरे से फ़र्क़ होने के पीछे कई कारण हो सकते हैं। जैसे– किसी छात्र ने विद्यालय में देरी से प्रवेश लिया हो, या उसके घर में कोई दुर्घटना हुई हो, या स्थानान्तरण की वजह से उसे किसी अन्य विद्यालय में जाना पड़ा हो, आदि। ऐसे में हमें बच्चों के स्तर के अनुरूप समूहों का निर्माण करना पड़ेगा जो कुछ समय के लिए स्थाई हो सकते हैं।



चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

बहुधा ऐसे विद्यालय भी होते हैं जिनमें एक ही शिक्षक कई विषय पढ़ा रहा होता है। ऐसी स्थिति में भी हमें समूह बनाने पड़ते हैं। यदि किसी विद्यार्थी की रुचि गणित विषय में है तो वह गणित समूह का नेतृत्व कर सकता है, इसी तरह भाषा और विज्ञान में दिलचस्पी रखने वाले विद्यार्थी भी अपने समूह में सीख और सिखा सकते हैं।

बच्चों के अनुभव, दक्षता के अनुसार भी समूह बन सकते हैं। जैसे– किसी विद्यार्थी के पिताजी गाड़ियाँ ठीक करते हैं और बच्चा सुबह-शाम पिताजी को काम करते हुए देखता है। वह इस सन्दर्भ से जुड़ी अवधारणाएँ बच्चों को सिखाने में मदद कर सकता है। इसी तरह कृषक वर्ग से आने वाले बच्चे कृषि के बारे में, नापतौल के बारे में अन्य बच्चों से बातचीत कर सकते हैं। हो सकता है ऐसे बच्चे अन्य गतिविधियों में परफ़ेक्ट न हों, पर जो कार्य वो रोज़ करते हैं या होते हुए देखते हैं उसमें वे समझ ज़रूर रखते होंगे। समूह किसी भी आधार पर बनाएँ लेकिन मूल बात यह है कि समूह के माध्यम से जो दक्षता विकसित करना चाहते हैं उसमें यह मददगार हों। जब भी समूह बनाएँ उससे पहले शिक्षक के पास यह ख़ाका ज़रूर हो कि गतिविधि क्या और कैसे होगी, बच्चे क्या करेंगे और वह स्वयं क्या करेंगे, जिससे विद्यालय में शिक्षण का स्तर कभी भी कमतर न हो पाए और वो अपने क्षेत्र से भटके भी नहीं।

मेरा मानना है कि समूहों में एक साथ बैठकर कार्य करने की क्षमता छोटे बच्चों के साथ जल्दी और ज़्यादा विकसित हो पाती है। कक्षा 1 से 5 के बच्चे इसमें ज़्यादा कार्य कर पाते हैं। कक्षा 6 से आगे के बच्चों के साथ चर्चा कर ज़्यादा कार्य कर सकते हैं।

रजनी : कुछ बातें रेखांकित करूँगी। जैसे ही बच्चा 8-9 महीने का हो जाता है उसको उसके साथ बात करने, खेलने वाले साथी की ज़रूरत महसूस होती है और उनके साथ में खेलने से वे नई चीज़ें सीखते भी हैं। हम वयस्क भी अपने साथियों से बहुत कुछ सीखते हैं। यह कह सकते हैं कि शायद इंसानी प्रकृति का ही हिस्सा है कि हमें साथ-साथ सीखना अच्छा लगता है। दूसरी बात, सीखना-सिखाना सिर्फ़ अकादमिक चीज़ों या विशेषज्ञों तक ही सीमित नहीं है, बच्चे साथ-साथ रहते हुए बहुत सारी चीज़ें पढ़ने-लिखने के इतर भी सीखते हैं। यह भी कि साथ-साथ सीखना हर बच्चे को एक आत्मविश्वास देता है कि उसको भी बहुत कुछ आता है जो वह दोस्तों के साथ साझा कर सकता है।

औपचारिक और अनौपचारिक दोनों परिवेश में बच्चे के सीखने को देखने पर समझ आता है कि यह प्राकृतिक ही है कि हम एक दूसरे को देखते हुए, समझते हुए बहुत कुछ सीखते चलते हैं। कई मौक़ों पर उद्देश्य सीखना नहीं रहता हो तब भी एक साथ हम सीख ही जाते हैं। यह भी कि एक दूसरे से सीखना, एक अनौपचारिक से परिवेश में सीखना, थोड़ा आसान होता है।

अमित, आप अपनी बात रखें।

अमित शर्मा : औपचारिक और अनौपचारिक दोनों परिवेश में बच्चे के सीखने को देखने पर समझ आता है कि यह प्राकृतिक ही है कि हम एक दूसरे को देखते हुए, समझते हुए बहुत कुछ सीखते चलते हैं। कई मौक़ों पर उद्देश्य सीखना नहीं रहता हो तब भी एक साथ हम सीख ही जाते हैं। यह भी कि एक दूसरे से सीखना, एक अनौपचारिक से परिवेश में सीखना, थोड़ा आसान होता है। शैक्षिक दस्तावेज़ों में यह बात बार-बार रेखांकित की जाती है कि सीखना एक सक्रिय प्रक्रिया है। सीखने में, सीखने वाले का सक्रिय रूप से शामिल होना बहुत ज़रूरी है। लेकिन अधिकांश विद्यालयों में आमतौर पर जो कक्षा प्रक्रियाएँ घटित होती नज़र आती हैं उनमें शिक्षक और बच्चे के बीच जिस तरह का संवाद होना चाहिए, उसका अभाव नज़र आता है। बच्चे रिसीवर की तरह सुन रहे होते हैं, जो भी सिखाया जा रहा है चाहे वह विषय हो, क्षमताएँ या मूल्य, यह सभी बच्चे के परिवेश से कैसे जुड़ रहे हैं, उनके अपने अनुभव, पसन्द, नापसन्द उसमें कैसे शामिल हो रहे हैं और बच्चों की दृष्टि से इन्हें देख पाना थोड़ा मुश्किल होता है। जब ये जुड़ाव या सम्बन्ध नहीं बन पाते हैं तो जो सिखाया जा रहा है उसे समझना बच्चे के लिए मुश्किल हो जाता है। सीखना जब ख़ुद के अनुभवों, सन्दर्भों, परिस्थितियों से जुड़ता है तब सीखने वाले अपेक्षित दक्षताओं को हासिल करने के लिए आगे बढ़ पाते हैं। इसलिए यह बहुत ज़रूरी हो जाता है कि ऐसा माहौल, प्रक्रियाएँ निर्धारित की जाएँ जिनमें बच्चे अपनी बातें, जिज्ञासाएँ, प्रश्न, भ्रम रख पाएँ, और अपनी रुचि व गति के अनुसार सीख पाएँ। हमारा इस बात में पूरा विश्वास हो कि सभी बच्चे सीख सकते हैं और यह भी कि हर बच्चे की रुचि, उसके सीखने के तरीक़े और गति अलग होती है। इस सन्दर्भ में यह ज़रूरी हो जाता है कि सभी बच्चों की दक्षताओं, अनुभवों, और रुचियों को बेहतर तरीक़े से समझा जाए। बिना यह समझे ऐसे समूह का निर्माण मुश्किल होगा जो निर्धारित लक्ष्यों को हासिल कर सके। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* भी सहभागी रूप से सीखने (peer learning) को स्पष्ट रेखांकित करती है। नीति कहती है कि बच्चे सतत सीखते रहने की कला सीखें, समस्या समाधान और तार्किक एवं संरचनात्मक / रचनात्मक रूप से सोचना सीखें, विभिन्न विषयों के अन्तर्सम्बन्धों को

देख पाएँ, कुछ नया सोच पाएँ, नई जानकारी और बदलती परिस्थितियों को समझ पाएँ और इन परिस्थितियों में जानकारी का उपयोग कर पाएँ। शिक्षण प्रक्रिया शिक्षार्थी केन्द्रित हो, उसमें जिज्ञासा, खोज, अनुभव और संवाद के आधार पर उपरोक्त प्रक्रियाएँ संचालित होती हुई नज़र आएँ। साथ ही प्रक्रियाएँ लचीली हों, समग्रता में हों, और समन्वित रूप से देखने, समझने में सक्षम बनाने वाली हों। अगर हम इन सारे बिन्दुओं को समग्रता में देखें तो ये सब सीधे साथ-साथ सीखने पर जाकर केन्द्रित होती हैं। जैसा मैंने पहले कहा, अभी स्कूलों / कक्षाओं में प्रक्रियाएँ इस तरह से होती हैं कि वहाँ बच्चे अपने-अपने दायरों में ही सिमटकर रह जाते हैं। सबकुछ इतना औपचारिक होता है कि मन में जो चल रहा है, स्पष्ट रूप से कह पाना सम्भव नहीं हो पाता। समूह की प्रक्रिया यह अवसर उपलब्ध कराती है कि हम एक दूसरे को सुनें, समझें, एक दूसरे के विचारों को जानें, अपने विचार उनके सामने रखें और आपस की सहभागिता बढ़ाएँ। इस दृष्टि से भी कि पियर लर्निंग ऐसे नागरिकों को तैयार करने का एक महत्त्वपूर्ण ज़रिया है जिनके बारे में संविधान शिक्षकों, विद्यालयों से अपेक्षा रखता है। शिक्षा नीति के मूलभूत सिद्धान्त भी साथ-साथ सीखने पर ज़ोर देते हैं। ये सिद्धान्त हैं :


चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

पहला, हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की पहचान और उनके विकास के लिए प्रयास करना, मतलब हर बच्चे में कुछ-न-कुछ ऐसा है जो बाक़ी के लोगों को वो सीखने में मदद कर सकता है।

दूसरा, सीखने की प्रक्रिया में लचीलापन हो ताकि शिक्षार्थी अपने सीखने के तौर-तरीक़े चुन सके। इसमें भी यह एक निर्णायक प्रक्रिया साबित हो सकती है।

तीसरा, विषयों के बीच, पाठ्यक्रम और पाठ्येतर गतिविधियों के बीच, व्यावसायिक और शैक्षिक धाराओं के बीच, जो स्पष्ट अलगाव हैं उन्हें समाप्त करना है। साथ-साथ सीखने के तहत चर्चाओं, सामूहिक चर्चाओं में जब बच्चों को शामिल करते हैं, हम पाते हैं कि भाषा के पाठ सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों की तरफ़ भी ले जाते हैं व पर्यावरण के प्रति भी संवेदनशील बना सकते हैं। बच्चे की भाषा को कक्षा में लाना, पाठ्यपुस्तक, विद्यालय की भाषा के पहले जो ब्रिज है उनको बनाना, स्कूलों और घर के बीच, समाज और स्कूल के बीच की दूरी को कम करना, इन सभी में ऐसी शिक्षण प्रक्रियाएँ महत्त्वपूर्ण रोल अदा कर सकती हैं। इसके साथ ही एक दूसरे को समझ पाना, सहयोग, सहभागिता, सहकारिता जिनके बग़ैर लोकतांत्रिक समाज सम्भव नहीं है, इन प्रक्रियाओं से इनके विकसित और सुदृढ़ होने की भी सम्भावनाएँ बनती हैं। कक्षा एक में पढ़ने वाले बच्चों के साथ उनके छोटे भाई-बहिन भी विद्यालय में आ जाते हैं। ये बच्चे कक्षा का हिस्सा नहीं होते, उनके साथ औपचारिक शिक्षण नहीं होता लेकिन दो-चार महीनों में वे कुछ बुनियादी दक्षताओं की तरफ़ स्वयं बढ़ने लगते हैं। खेल में शामिल होने से खेल के नियम, क़ायदे उनको समझ में आने लगते हैं, बाल गीत हाव-भाव के साथ याद होने लगते हैं। ये सारी

बातें इस तरफ़ ही इशारा करती हैं कि यदि बच्चों को ऐसे अवसर दिए जाएँ, एक दूसरे के साथ सीखने के मौक़े दिए जाएँ तो वे बहुत आसानी से और बहुत-से दायरों में सीखेंगे।

सीखने को सहज बनाने की बात होती है। यानी, ऐसा सीखना जिसमें डर, और किसी तरह का दबाव न हो, अपने प्रश्न, जिज्ञासाओं को रखने की पूरी स्वतंत्रता हो। साथ-साथ सीखने की प्रक्रिया में ये चीज़ें स्वत: ही आ जाती हैं। सहज शायद इस वजह से हो पाती है कि बच्चे अपने साथियों को बात करने की आज़ादी देते और बेहतर ढंग से समझते हैं। हम वयस्कों को सोचने की ज़रूरत है कि हमारे लिए इसके निहितार्थ क्या हैं। जब हम बच्चों के साथ उनके सहयोगी बनकर सीखने का काम करें तो हम उनको बेहतर समझ पाएँ, उनके लिए हमें अपने व्यवहार या सोच में क्या परिवर्तन करने की ज़रूरत हो सकती है। साथ-साथ सीखने में हम एक दूसरे को, एक दूसरे के प्रश्नों को सुनना सीखते हैं, सहमतियों, असहमतियों को सुनना सीखते हैं, पक्ष, विपक्ष को सुनना सीखते हैं। यह भी सीखना होता है कि हम बिना किसी बायस के उन प्रश्नों या शंकाओं पर विचार कर सकें। ये सारी चीज़ें लगातार किसी व्यक्ति को, बच्चे को, या वयस्क के रूप में हमें भी लगातार सीखने वाला बनने के लिए ज़रूरी होती हैं।

सीखने को सहज बनाने की बात होती है। यानी, ऐसा सीखना जिसमें डर, और किसी तरह का दबाव न हो, अपने प्रश्न, जिज्ञासाओं को रखने की पूरी स्वतंत्रता हो। साथ-साथ सीखने की प्रक्रिया में ये चीज़ें स्वतः ही आ जाती हैं। सहज शायद इस वजह से हो पाती है कि बच्चे अपने साथियों को बात करने की आज़ादी देते और बेहतर ढंग से समझते हैं।

रजनी : श्वेता, आप अपनी बात रखें।

श्वेता : अकसर प्राथमिक स्कूलों में देखते हैं कि कुल तीन शिक्षक हैं और पाँच कक्षाएँ हैं। ऐसे में अकसर कक्षा 1 और 2 का एक समूह बन जाता है, हालाँकि कभी-कभी उसमें कक्षा तीन भी शामिल हो जाती है। कक्षा 4 और 5 को सीखने की प्रक्रिया में एक विस्तारित स्तर पर देखते हैं। यहाँ हर कक्षा एक शिक्षक सँभाल रहा होता है। मेरे अनुभव से ज़्यादा चुनौतियाँ कक्षा 1 और 2 के बच्चों के साथ काम करने के दौरान ही आती हैं क्योंकि कक्षा 1 और 2 के बच्चे अपने परिवेश व अनुभव के साथ आते ज़रूर हैं, लेकिन स्कूल की औपचारिक प्रक्रियाओं को समझना, विषय से जूझना, अवधारणा को और बेहतर तरीक़े से समझना, स्कूल की भाषा को अपनाना, इन चीज़ों से सामंजस्य बैठाने में समय लगता है। जहाँ कक्षा 1 और 2 में कम बच्चे होते हैं, जैसे– 15, 20 या 25 तो शिक्षक कक्षा को सँभाल पाते हैं। लेकिन जब बच्चों की संख्या ज़्यादा हो जाती है तो कक्षा को सँभालने की चुनौतियाँ भी बढ़ने लगती हैं। ऐसे सन्दर्भ में समूह में सीखने को कक्षा के स्तर पर देख सकते हैं।

दूसरा कक्षा प्रक्रियाओं को कक्षा संरचना के स्तर पर देख सकते हैं, जैसे– कक्षा की संरचना कैसी हो? बच्चों की संख्या अधिक होने पर क्या किया जाए? इसमें समूह निर्माण करके समूह में बच्चों को कुछ टास्क देना और उनके साथ काम करना। इसके अलावा, किसी ख़ास अवधारणा को पढ़ाते वक़्त बच्चों के स्तर, उनकी क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षक अपनी कक्षाओं में समूहों का निर्माण करते हैं। इन समूहों में एक ही कक्षा में पढ़ने वाले अलग-अलग स्तर के बच्चे शामिल होते हैं और एक दूसरे के साथ सीखने की प्रक्रियाएँ अपना रहे होते हैं। कई बार जो बच्चे बेहतर नहीं सीख पा रहे हैं या जिनके सीखने की गति थोड़ी धीमी है, तब भी हम उनको अलग समूह में बाँट देते हैं। जैसे– ये दस बच्चे ऐसे हैं जो अभी पढ़ना नहीं जानते हैं, ये कुछ बच्चे कुछ शब्दों और अक्षरों को पहचानते हैं, इनके दो अलग समूह बनाए जा सकते हैं। बाक़ी जो बच्चे उनसे थोड़ा और

आगे हैं, पढ़ना जानते हैं, उनका एक समूह बन सकता है। ऐसी प्रक्रियाएँ कक्षा में होती ही हैं, इनपर और बारीक़ी से मैं बात करूँगी।

साथ-साथ सीखने की ज़रूरत क्यों होती है? बच्चे अपने अनुभवों से सीखते हैं। वे अपने अनुभव को साझा करना चाहते हैं उसपर चर्चा और एक दूसरे से सवाल करना चाहते हैं। किसी भी व्यक्ति के सोचने की प्रक्रिया, केवल उस व्यक्ति को ही नहीं, बल्कि दूसरे व्यक्ति को भी प्रभावित करती है, यानी इन सभी प्रक्रियाओं के द्वारा हम एक दूसरे से कुछ सीख रहे होते हैं। ऐसी प्रक्रियाएँ हो पाएँ, इसके लिए ज़रूरी है कि बच्चों के लिए स्कूल में कुछ ऐसे मौक़े बनाए जाएँ जहाँ बच्चों को उनके लर्निंग लेवल के हिसाब से सीखने को मिले, पर वहाँ विविधता भी शामिल हो। जब बच्चों के लर्निंग लेवल के हिसाब से समूह बनाते हैं तो वहाँ ऊपर ज़िक्र किए गए मौक़े ज़्यादा बनते हैं। किसी समूह में कुछ बच्चे ऐसे हो सकते हैं जो अपनी बात को बेहतर तरीक़े से रख पाते हैं और कुछ बच्चे शान्त होते हैं। शान्त बच्चे भले ही अपनी बात को बेहतर तरीक़े से नहीं रख पाएँ लेकिन सुनने की प्रक्रिया ज़रूर हो रही होती है। किसी-न-किसी कौशल, किन्हीं प्रक्रियाओं के माध्यम से समूह के सभी बच्चे बातचीत में शामिल हो रहे होते हैं। ये कौशल के विकास में भी ज़रूरी होता है, जैसे– मौखिक भाषा, सुनने के कौशल, आदि के विकास के लिए। समूहों में काम करते हुए बच्चे समस्या समाधान भी सीखते हैं। जब बच्चों को समूह में कुछ टास्क, समस्या या ज़िम्मेदारी दी जाती है, तो वे एक साथ उससे गुज़रते हुए कई तरह के समाधान भी सोच रहे होते हैं और उनपर भी चर्चा कर रहे होते हैं। इससे समस्या समाधान करने का कौशल भी विकसित होता है। बच्चे अपने दोस्तों, शिक्षकों से खुल नहीं पाते हैं लेकिन समूह में वे अपने दोस्तों के साथ सहजता के साथ सीख रहे होते हैं।


चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

अकसर शिक्षक की भूमिका सिर्फ़ टास्क और निर्देश देने तक सीमित होती है और फिर बच्चे काम कर रहे होते हैं। इस प्रक्रिया में शिक्षक एक सहयोगी के रूप में होता है। शिक्षक से अपेक्षित है कि वह यह देखे और समझे कि समूह में जब बच्चे काम कर रहे हैं तो प्रक्रियाएँ किस तरह से हो रही हैं, किस बच्चे को क्या समझ नहीं आ रहा, क्या टास्क में कुछ बदलाव करने की ज़रूरत है? कई बार जब मिश्रित समूह बनते हैं तो यह भी होता है कि तेज़ गति से काम करने वाले बच्चे अपना काम जारी रखते हैं लेकिन अन्य बच्चे चुपचाप ही बैठे रहते हैं। यहाँ भी शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि वह समूह को जीवन्त बनाए रखने और इन विविध क्षमताओं वाले बच्चों के बीच सामंजस्य बनाए रखने में मदद करे और सभी बच्चे एक दूसरे की बातों में शामिल हों। कक्षा में विषयों को पढ़ाने, अवधारणाओं पर काम करने के लिए समूह कार्य होता है ताकि बच्चे उन अवधारणाओं को बेहतर तरीक़े से सीख पाएँ। एक समूह निर्माण में विषय के शिक्षण, स्तर के आधार के अलावा अन्य बातें भी ध्यान में रखने की ज़रूरत है। कक्षाओं में विविध पृष्ठभूमि के बच्चे होते हैं। ये विविधता जेंडर की, जाति, भाषा, सामाजिक स्तर की हो सकती है। समूह

बनाते समय इन सभी विविधताओं को शामिल करना ज़रूरी है। मेरा अनुभव है कि कक्षा 1 और 2 में तो नहीं लेकिन कक्षा 3 और 4 तक आते-आते लड़कियों और लड़कों के अलग समूह बनने लगते हैं, तो समूह कार्य के ज़रिए विषयों की अवधारणाओं पर काम करने के साथ-साथ इन मुद्दों पर भी काम करने की ज़रूरत है। जेंडर, जाति, भाषा आदि को ध्यान में रखते हुए समूह कार्य (फलाँ भाषा बोलने वाला, या फलाँ जाति का बच्चा है जो शायद क्लासरूम में बहुत अलग-अलग रहता है या उसका इंटरैक्शन नहीं होता) एक दूसरे के बीच की दूरी पाटता है और बच्चों के बीच एक दूसरे के प्रति संवेदना, सहयोग, समझने की भावना आती है। यहाँ पर बच्चों में आस उत्पन्न हो रही होती है।

मैं समूह में काम करने के कुछ ठोस उदाहरण रखूँगी। हम लॉकडाउन में मोहल्ला लाइब्रेरी चला रहे थे। हमने देखा कि कक्षा 5 और 6 के और कुछ कक्षा 2 और 3 के बच्चे साथ में बैठे हैं। उनमें से एक बड़ा बच्चा किताब लेकर बैठा है और अँगुली रखते हुए पढ़ रहा है। दूसरे बच्चे उसकी तरफ़ ध्यान दे रहे हैं और किताब को देख भी रहे हैं व सुन भी रहे हैं। इन बच्चों की उम्र भी फ़र्क़ है, और कक्षा व सीखने के स्तर भी फ़र्क़ हैं। एक और उदाहरण है, एक शिक्षिका गणित पढ़ा रही हैं। कक्षा में 35 बच्चे हैं। वे बच्चों को 10-10 के बण्डल बनाना सिखा रही हैं। और उन्होंने 5-5 बच्चों के ऐसे समूह बनाए हैं जिनमें कक्षा 2 और कक्षा 1 के बच्चे एक साथ हैं। इन समूहों में जिन बच्चों को 10-10 का बण्डल बनाना आ रहा है वे अन्य बच्चों की मदद कर रहे हैं। कोई बच्चा गिनती करते हुए अटक जा रहा है तो वो उस बच्चे की मदद कर उसको सीखने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। शिक्षिका भी बीच-बीच में अवलोकन कर रही हैं, वह भी बच्चों की इस विविधता को समझ रही हैं। कई बार शिक्षिका उन बच्चों पर ध्यान नहीं देतीं जो बेहतर नहीं कर पाते। उन्हें लेबल भी कर दिया जाता है। समूह बनाते समय इस बात की तरफ़ भी ध्यान रखना ज़रूरी है। हर बच्चे को कक्षा में सम्मान देते हुए, उसके सीखने की विविधता, सामाजिक विविधता को ध्यान में रखकर महत्त्व देते हुए कक्षा में स्थान दें।

> समूह निर्माण की भी अपनी अलग प्रक्रिया है और शिक्षक की भूमिका सिर्फ़ निर्देशन देना या 'चॉक एंड टॉक' की नहीं है, क्योंकि पीयर लर्निंग की पूरी प्रक्रिया ही पारस्परिक भागीदारी की है। पर्यावरण या विज्ञान, या फिर भाषा और गणित में समूह में की जाने वाली कई गतिविधियाँ ऐसी हैं जिनमें समूह ज़रूरी होता है, कई बार उसका रैंडम होना भी ज़रूरी होता है।

रजनी : मैं युगलजी से गुज़ारिश करूँगी कि वो अपनी बात रखें।

युगल किशोर : 2019 सितम्बर से लर्निंग एक्टिविटी सेंटर और मोहल्ला केन्द्र शुरू हुए। यहाँ की शिक्षण प्रक्रिया में समूह में होने वाली गतिविधियाँ बहुत-सी हैं। समूह निर्माण की भी अपनी अलग प्रक्रिया है और शिक्षक की भूमिका सिर्फ़ निर्देशन देना या 'चॉक एंड टॉक' की नहीं है, क्योंकि पीयर लर्निंग की पूरी प्रक्रिया ही पारस्परिक भागीदारी की है। पर्यावरण या विज्ञान, या फिर भाषा और गणित में समूह में की जाने वाली कई गतिविधियाँ ऐसी हैं जिनमें समूह ज़रूरी होता है, जैसे– कौन आया कौन गया, झट पट हाथ रख। कई बार समूह पूर्व-निर्धारित होता है और कई बार उसका रैंडम होना ज़रूरी होता है। जैसे– 'नेता नेता चाल बदल', जिसमें सभी बच्चे एक गोले में खड़े ताली बजा रहे होते हैं और एक नेता होता है जो निर्धारित एक्ट करता है और बाक़ी उसको कॉपी करते हैं। एक बच्चा जो कुछ दूर होता है उसे आकर बताना होता है कि नेता कौन है, किसके कहने पर ये लोग अपनी चाल या क्रिया बदल रहे हैं। पाठ्यपुस्तकों पर आधारित गतिविधियों के इतर भी कई सारे उद्देश्यों को लेकर समूह

में काम हो सकता है। जैसे कि विद्यालयों में अलग-अलग समूह बने होते हैं और कुछ ख़ास ज़िम्मेदारियाँ उनके पास होती हैं। पौधों को रोज़ पानी डालना है, देखना है, उनमें पानी डालने के लिए पानी की व्यवस्था कहाँ से करनी है, आदि के लिए एक समूह बनाया। समूह का एक लीडर भी है। यह समूह मिलकर सुनिश्चित करता है कि ये सारी सुविधाएँ हमारे स्कूल में उपलब्ध हैं कि नहीं? यहाँ भी पारस्परिक भागीदारी या पीयर लर्निंग मुझे दिखती है। बच्चे एक दूसरे से बातचीत, तर्क संगठित तरीक़े से कैसे करते हैं और उस प्रक्रिया को पूरा करते हैं, तो कक्षा के बाहर भी पीयर लर्निंग होती है। मॉनीटर भी कक्षा में एक अहम रोल अदा करता है। उसकी भूमिका सिर्फ़ कक्षा में शान्ति बनाए रखने की है? या फिर यह भी है कि वह कक्षा में हो रही गतिविधियों को भी ऑब्ज़र्व करे, अपने इनपुट और गाइडेंस भी दे। मैंने इस विषय पर सोचने की कोशिश की तो पाया कि बहुत-सी दक्षताएँ वो साथ-साथ सीख रहे होते हैं। जैसे– ऑब्ज़र्व करने, विश्लेषण करने की क्षमता, अपनी बात को प्रस्तुत करना, अर्थात शिक्षक से किसी की शिकायत करनी है या मदद माँगनी है, आदि। पीयर ग्रुप में मॉनीटर नेतृत्व की भूमिका में होते हैं और वे कॉन्फ़्लिक्ट को भी मैनेज कर रहे होते हैं।

समूह बनाने के आधारों के बारे में बात हुई है। अभी कुछ मोहल्ला कक्षाओं में ऐसे समूह भी थे जिनमें कक्षा 1 से 8 तक के बच्चे केन्द्रों पर आते थे। एक नया चैलेंज था स्तर में इतनी विविधता होने से, निश्चित तौर पर ऐसी विविधता से कक्षा प्रबन्धन में भी और जो टॉपिक व जो भी विषय या अवधारणा लेंगे उसके शिक्षण में चुनौतियाँ आ सकती हैं। लेकिन यहाँ हमें विविधता का यहाँ फ़ायदा मिला। इस महामारी के दौर में बच्चे लगभग 15-18 महीने कक्षा से डिस्कनेक्ट रहे। हालाँकि, मोहल्ला कक्षाएँ लगीं और उन्होंने कई लोगों के साथ काम किया और सीखा। बच्चों के मम्मी-पापा, उनके भाई-बहिन, शिक्षक, दोस्त सभी इसमें शामिल हुए तो जो पीयर लर्निंग कक्षा तक सीमित थी या जो हमउम्र या एक ही कक्षा के बच्चों तक सीमित थी वो दायरा बढ़ गया। और समूह की इस विविधता का फ़ायदा बच्चों को मिला भी। एक दूसरी तरह के समूह में ज़बरदस्त पीयर लर्निंग हमें देखने को मिली। हमने केन्द्रों पर और स्कूलों में 4-5 बच्चों का एक समूह बनाया। उसकी ज़िम्मेदारी थी पुस्तकालय का संचालन करना, पुस्तकालय के पीरियड सुनिश्चित करना, बच्चे किताब ले रहे हैं और किताबें ठीक-ठाक वापस आ रही हैं या नहीं, साथ ही यह भी सुनिश्चित करना कि किसने किताब ली और कब वापस दी, उसका इस्तेमाल हुआ या नहीं, सबसे ज़्यादा पढ़ी जाने वाली किताब कौन-सी है और उसका ओवरऑल संचालन। इस तरह के समूह में एक दूसरे के साथ जो सामंजस्य बैठता है, इसमें शिक्षक की भूमिका सिर्फ़ बच्चों को उनकी भूमिका बताना और फिर कहीं-कहीं गाइड करना है। हम कोशिश करते हैं कि यह समूह कम-से-कम तीन महीने के लिए स्थाई रहे और तीन महीने बाद फिर से रोटेशन पर जाए। तीन महीने बाद जब इसके संचालन के लिए दूसरा समूह बनता है तो पहले समूह के मेम्बर्स उनकी मेन्टरिंग करते हैं और संचालन में मदद करते हैं। निश्चित तौर पर, निर्देशक के रूप में शिक्षक की मुख्य ज़िम्मेदारी तो है ही लेकिन उसमें शामिल होकर सीखने की प्रक्रिया में जो वो ख़ुद सीखते हैं और अपने कामों में बेहतरी करते हैं और जो फाइंडिंग दूसरों



चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

तक पहुँचाते हैं, तो मुझे लगता है कि बतौर फ़ेसिलिटेटर और लर्नर के रूप में भी शिक्षक की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है।

रजनी : साथ-साथ सीखने पर कई बातें फ़र्क़ तरीक़े से सामने आ रही हैं और उससे बहुत सारे नए विचार निकलकर आ रहे हैं। सावित्रीजी से गुज़ारिश है कि अपनी बात रखें।

सावित्री : बच्चे घर, समुदाय में यह देखते ही हैं कि लोग समूह में काम करते हैं। अत: बच्चों को शुरू से ही मालूम होता है कि समूह में काम कैसे किया जाए। जब बच्चे स्कूल आते हैं तो यह कौशल धीरे-धीरे बेहतर होता जाता है। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं उनमें और बेहतर ढंग से कार्य करने की क्षमताएँ विकसित होती जाती हैं। समूह में सभी बच्चे अपनी बात रख सकें इसके लिए एक दूसरे के साथ सहज होना ज़रूरी है। ऐसा नहीं हो कि कुछ बच्चों को अपनी बात को रखने का मौक़ा ही न मिले। क्योंकि अकसर बहुत-से बच्चे बोलने में झिझकते हैं, जानते हुए भी अपनी बात को मन में दबा लेते हैं लेकिन कुछ अन्य के साथ अपने विचार बेहतर तरीक़े से रख सकते हैं। मैं जब भी अपनी कक्षा में कार्य कराती हूँ, मेरे सबसे पहले निर्देश यह होते हैं कि सबसे पहले दिए गए टास्क को अपने साथियों के साथ साझा करें और सभी को यह समझ आ जाए तभी आगे बढ़ें। मैंने पाया है कि ऐसा करने से बच्चों की भागीदारी में सकारात्मक फ़र्क़ पड़ता है। इस बात से भी मैं सहमति रखती हूँ कि शिक्षक होने के नाते कक्षा की विविधता को समझना चाहिए और भाषा, स्तर, पारिवारिक स्थिति, आदि का सम्मान करते हुए समूह निर्माण का काम होना चाहिए। समूह बनाने में हम बच्चों की मदद करें, गतिविधियों / टास्क को ठीक से बताएँ, नियम अगर है तो बच्चों से साझा करें, समय सीमा, सबको बोलने के अवसर देना, किस तरीक़े से कार्य किया जा सकता है, आदि। ये बातचीत करने के बाद बच्चों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिए छोड़ देना चाहिए। फिर शिक्षक लगातार समूहों में जाकर बच्चों से बात करते रहें, इससे मुझे लगता है कि बच्चों के आत्मविश्वास में वृद्धि होती है, उन्हें कार्य करने में बहुत मदद मिलती है और शिक्षक भी यह समझ पाता है कि किस तरीक़े से बच्चे कार्य कर पा रहे हैं या नहीं, और मैं जब अगली बार कार्य करूँगी तो मेरी योजना क्या होगी? क्या मुझे उसमें कुछ संशोधन करना होगा ताकि बच्चे सहज तरीक़े से अपना काम कर सकें और सीखते जाएँ। साथ-साथ सीखने के दौरान बच्चे एक दूसरे से बातचीत करना, एक दूसरे के संशयों, प्रश्नों, उत्तरों को समझना, सम्मान देना भी सीखते हैं। इससे कक्षा प्रक्रिया बेहतर होती है। बच्चे बेहतर कर पाते हैं और अपना रिज़ल्ट अच्छा दे पाते हैं। उनमें एक ख़ुशी वाला माहौल रहता है एवं बच्चे सन्तुष्ट रहते हैं कि मैंने इस कार्य को इस तरीक़े से पूरा किया और मुझे ऐसा करने में बहुत मज़ा आया।

> साथ-साथ सीखने के दौरान बच्चे एक दूसरे से बातचीत करना, एक दूसरे के संशयों, प्रश्नों, उत्तरों को समझना, सम्मान देना भी सीखते हैं। इससे कक्षा प्रक्रिया बेहतर होती है। बच्चे बेहतर तरीक़े से कर पाते हैं और अपना रिज़ल्ट अच्छा दे पाते हैं। उनमें एक ख़ुशी और ख़ुशी वाला माहौल रहता है एवं बच्चे सन्तुष्ट रहते हैं कि मैंने इस कार्य को इस तरीक़े से पूरा किया।

रजनी : लोकेशजी आप अपनी बात रखें।

लोकेश : मैं पीयर लर्निंग की व्यवहारिक चुनौतियों की बात करूँगा। पहला कन्फ़्यूज़न यह आता है कि समूह किस तरह बनाए जाएँ? क्या हम ऐसे बच्चों को एक साथ रखें जो एक स्तर के हैं, जैसे– तेज़ बच्चों को तेज़, औसत को औसत बच्चों के साथ, और जो काफ़ी संघर्ष कर रहे हैं वो सारे एक साथ? लेकिन इसमें बच्चों की जो इमेज बनती है उसमें दिक़्क़त आती है।

तेज़ बच्चों को साथ रखने पर ये कमज़ोर बच्चों पर टिप्पणियाँ करते हैं और कमज़ोर बच्चे ख़ुद को और भी कमज़ोर मानना शुरू कर देते हैं। दूसरा तरीक़ा मिश्रित समूह बनाने का होता है। लेकिन यहाँ शिक्षक के लिए चुनौती आती है कि वो अलग स्तर और गति से सीखने वाले बच्चों के सीखने को कैसे सुनिश्चित करे। मुझे लगता है समूह में काम करवाना काफ़ी पेचीदा होता है। बहुत-से बच्चे समूह में काम करना बिलकुल पसन्द नहीं करते, काफ़ी कोशिशों के बावजूद वो समूह में भाग नहीं लेते या समूह में बैठ जाते हैं पर उसमें भागीदारी नहीं करते। तीसरा यह भी होता है कि समूह में एक या दो बच्चे डोमिनेट करते हैं। कई बार डोमिनेशन बढ़ भी जाता है और समूहों में छोटे-छोटे उप-समूह बन जाते हैं। बच्चों में राजनीति शुरू हो जाती है अपने-आप को अच्छा, बेहतर साबित करने की। वे अपने समूह के बाक़ी साथियों पर जल्दी काम करने का दबाव बनाते हैं और ये बहुत ज़्यादा घातक हो जाता है। इसका हल ये हो सकता है कि हम समूह बनाते समय, समूह बनाने का उद्देश्य ज़रूर स्पष्ट करें। यह भी कि ये अस्थाई समूह है। दूसरा, समूह के सदस्यों को एक दूसरे को जानने के लिए पर्याप्त समय देना। जब बच्चे एक दूसरे को जानते हैं तब बच्चे एक दूसरे की मदद भी करने लगते हैं। बच्चे ख़ुद बताते हैं कि इस बच्चे में ये कमज़ोरी है, ये बहुत अच्छा काम करता है। तीसरा, समूहों को बदलते रहना चाहिए। यदि स्थाई समूह बन जाता है तो फिर सामूहिकता वाली भावना आने लगती है। चौथा, जब समूह बनाते हैं तो समूह के साथ किए जाने वाले काम, उसकी पेडागॉजी, विषयवस्तु, विषयवस्तु के अनुसार किस तरह की गतिविधि होगी, उसके बुनियादी सिद्धान्त इन सभी को बारीक़ी से देखना ज़रूरी है। कई बार समूह बना लेते हैं, बच्चों को डिवाइड भी कर लेते हैं लेकिन योजना इतनी मजबूत नहीं होती कि समूह में कुछ अर्थपूर्ण काम हो पाएँ। इसलिए योजना में इसकी जगह हो कि ये चार बच्चे अलग हैं। कौन-सा बच्चा किस तरह की सम्भावना लेकर आएगा, कौन-सा बच्चा कहाँ संघर्ष करेगा इसको पहले से दर्ज कर लें। सामान्यत: यह पाया जाता है कि समूह कार्य प्रभावी होता है। इसका एक कारण यह है कि हम सामाजिक प्राणी हैं, हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक पहलू हैं जो हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसपर जितनी ज़्यादा बातचीत बच्चों के साथ की जाती है और उन्हें इस बात का आभास दिलाया जाता है कि समूह में सब मिलकर काम करेंगे तो हम काफ़ी आगे जाएँगे। समूह अलग-अलग तरह से बनाए जा सकते हैं। सिर्फ़ कक्षा के बच्चों के समूह के बजाय सीनियर और जूनियर बच्चों का समूह बनाया जा सकता है। बड़ी कक्षा और छोटी कक्षा का समूह ज़्यादा काम करता नज़र आता है क्योंकि बड़े बच्चों को कुछ ज़्यादा जानकारी रहती है। जोन ऑफ़ प्रोक्सिमल डेव्लपमेंट का विचार काम करता है। बहुत सारी ऐसी चीज़ें भी हैं जो हमें नहीं मालूम, बहुत सारी ग़लतियाँ हम शिक्षक भी करते हैं। लेकिन जब हम इन्हें स्वीकार करना शुरू करते हैं तो फिर एक ख़ास छवि की, जजमेंट की जो दीवार होती है टूट जाती है। एक शिक्षक होने के तौर पर ये बुनियादी सिद्धान्त अपने साथ रखें। इनके सकारात्मक परिणाम होते हैं।


चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

रजनी : धन्यवाद लोकेश, आप सभी साथियों से गुज़ारिश है कि आप अगर एक-दो मिनट में कुछ कहना चाहें।

पूनमजी, आपसे सवाल है कि बच्चे इस महामारी के वजह से 18 महीने बाद स्कूल जाना शुरू कर रहे हैं, उनपर मानसिक तौर पर क्या प्रभाव या असर पड़ेगा?

पूनम : पहले हमें ख़ुद की मानसिक स्थिति को स्पष्ट करना पड़ेगा। लम्बे समय से भय का वातावरण चल रहा था, असुरक्षा की भावना हम सबके मन में घर कर गई है, क्योंकि सभी ने अपने परिजनों को खोया है तो इसका भी मानसिक प्रभाव हम सभी पर पड़ा है। विद्यालय आने के बाद अभी भी हम इस तरह की गुंजाइशों में जी रहे हैं कि हमारे बच्चों को कुछ न हो जाए। सरकारी गाइडलाइन भी इसी तरीक़े की है कि आपको सामाजिक दूरी रखनी है। मुँह पर मास्क लगाना है, खाना साथ में नहीं खाना है, इस तरह की बहुत सारी पाबन्दियाँ लगाई हुई हैं तो जुड़ना चाहते हुए भी हम जुड़ नहीं पा रहे हैं। लेकिन हमें ख़ुद इस चीज़ के लिए तैयार रहना होगा और सबसे बड़ी बात, कि पढ़ाई को हौवा न बनाएँ, इसको एकमात्र मुद्दा न बनाएँ कि बच्चों की पढ़ाई नहीं हुई तो बस ख़त्म ही है ज़िन्दगी।

> बतौर शिक्षक समूह कार्य में यह सुनिश्चित करना ज़रूरी है कि सबकी भागीदारी हो। आमतौर पर हम देखते हैं कि कुछ बच्चे बोल पाते हैं और कुछ नहीं। दूसरा, मेरे ख़्याल से फ़ास्ट लर्नर या स्लो लर्नर जैसी टर्म्स भी ग़लत हैं। कुछ बच्चों को किसी ख़ास विषय के लिए ज़्यादा समय की ज़रूरत या किसी ख़ास टॉपिक के लिए किसी ख़ास शिक्षक की ज़्यादा ज़रूरत है

इस तरह की जो मानसिकता लेकर एक युद्ध लड़ रहे हैं और 24 घण्टे बच्चों पर एक प्रेशर बनाते हैं कि पढ़ाई करो, पढ़ाई करो, तो इस तरीक़े का वातावरण हमें नहीं बनाना है। जितना सरल, सुगम, सहज वातावरण पहले हम अपने दिमाग़ में तैयार करेंगे उतना ही सहज और सुगम वातावरण हम बच्चों को दे पाएँगे, आख़िर वे सीख तो हमसे ही रहे हैं। हम ही तो बच्चों को सिखा रहे हैं और इसमें सहयोगी के रूप में अभिभावक हैं, हम लोग हैं, समाज है और उसके दायरे भी हैं, शिक्षक और साथी बच्चे तो वैसे भी बहुत कम समय के लिए ही जुड़ पाते हैं बच्चे अच्छा ही करेंगे इसको सबसे पहले अपने दिमाग़ में रखें ताकि हम बच्चों के साथ उसी तरीक़े के वातावरण और मानसिकता से कार्य कर पाएँ।

रजनी : और कोई साथी अपनी बात रखना चाहेंगे?

युगल : बतौर शिक्षक समूह कार्य में यह सुनिश्चित करना ज़रूरी है कि सबकी भागीदारी हो। आमतौर पर हम देखते हैं कि कुछ बच्चे बोल पाते हैं और कुछ नहीं। दूसरा, मेरे ख़्याल से फ़ास्ट लर्नर या स्लो लर्नर जैसी टर्म्स भी ग़लत हैं। कुछ बच्चों को किसी ख़ास विषय के लिए ज़्यादा समय की ज़रूरत या किसी ख़ास टॉपिक के लिए किसी ख़ास शिक्षक की ज़्यादा ज़रूरत है, या फिर हो सकता है उसके किसी ख़ास साथी की या आपकी क्लास में कुछ बच्चे हो सकते हैं जो बेहतर तरीक़े से उनको उस टॉपिक को समझा सकते हैं। समय उनकी ज़रूरत के अनुसार आवण्टित किया जाए।

रजनी : एक और सवाल है, जो बच्चे लॉकडाउन के कारण प्रमोट होकर कक्षा 3 में आ गए हैं उनके साथ किस प्रकार का अध्ययन करवाया जाए?

लोकेश : रजनीजी, मैं इस सवाल को लेना चाहूँगा।

लोकेश : यह महत्त्वपूर्ण सवाल है और शायद शिक्षा में पहली बार आया होगा। बहुत ही व्यवहारिक सवाल भी है। हमारी अपेक्षा रहेगी कि वो कक्षा 3 का पाठ्यक्रम करे। अवधारणाओं का स्तर के अनुसार एक क्रम भी होता है लेकिन जो बच्चे दो सालों से स्कूल नहीं गए हैं उनको कक्षा 1 व 2 के बुनियादी सिद्धान्त तो सीखने ही होंगे। वो सिखाए बग़ैर कक्षा 3 की अवधारणा सिखाने की कोशिश करना

नाइंसाफ़ी होगी। सिस्टम से कई बार दबाव आता है कि इसे कक्षा 3 का इम्तेहान देना है। लेकिन सिस्टम भी लोगों से ही बनता है। एक शिक्षक होने के नाते मेरे लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि मेरे सारे बच्चे सीखें। कक्षा 3 का इम्तेहान लिखना महत्त्वपूर्ण नहीं है।

अवधारणाओं के कई बुनियादी पहलू होते हैं और उनको समझना ज़रूरी होता है। जब बच्चा इन बुनियादी बातों को सीखते हुए आगे बढ़ेगा तो सीखना अर्थपूर्ण भी होगा और स्थाई भी। शायद कक्षा का ढाँचा भी इसीलिए बनाया गया होगा। किसी बच्चे ने कक्षा 1-2 में आने वाली बुनियादी अवधारणाएँ नहीं पढ़ीं तो उसके लिए कक्षा 3 की अवधारणाएँ पढ़ना अर्थविहीन ही होगा। जैसे– जिस बच्चे को गिनती नहीं आए, संख्याएँ कैसे आगे बढ़ती हैं यह सोचने-समझने का मौक़ा ही नहीं मिला हो तो उससे हम संख्याओं के जोड़ने, घटाने की बात कैसे करें। बच्चों का इस दौर में काफ़ी लर्निंग लॉस हुआ है। हमें यह पहचानना होगा कि कौन-सी चीज़ें बच्चे नहीं कर पाए, क्या वे भूल गए, पहले उनपर ध्यान देना होगा। और फिर वे जिन कक्षाओं में हैं उनके पाठ्यक्रम पर काम करना होगा। अगर बच्चा कक्षा 3 में है लेकिन उसे कक्षा 1 या 2 की अवधारणाएँ नहीं आतीं तो पहले उनपर काम करना ही होगा। हो सकता है अतिरिक्त समय देना पड़े, ज़्यादा मेहनत करनी पड़े, पर यही मददगार होगा।



चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

पूनम : मैं कुछ बोलना चाहूँगी।

कई बार बच्चा सही उम्र पर सही कक्षा में नहीं जुड़ पाता; कभी गाँव के सुदूर इलाक़े से बच्चे होते हैं, प्रवासी, बंजारे, घुमन्तू होते हैं तो यह समस्या आती है। हमारे यहाँ फिर से स्कूल चालू हुए तब से हमने माना है कि दो महीने तक पहली कक्षा पर कार्य कराएँगे, अगले दो महीने तक ऐसा हम मानकर चल रहे हैं कि उनके साथ लगातार कार्य करेंगे और हमारे शिक्षण कार्य उस तरीक़े के होंगे जो बच्चों को मजबूत आधार देंगे।

श्वेता : दो साल तक बच्चों को कक्षा में पढ़ने-लिखने का अनुभव नहीं मिल पाया है। ऐसे में मुझे लगता है कि सीखने को केवल विषय, अवधारणाओं या कौशलों तक सीमित करके नहीं देखना चाहिए। स्कूल के पूरे समय को, यानी कक्षा के अतिरिक्त समय जैसे मिड डे मील, खेल असेम्बली या पुस्तकालय का समय, इस सब को हम बच्चों के कौशलों को, विषय की अवधारणाओं को समझाने में कैसे इस्तेमाल कर सकते हैं। क्या हमारे स्कूल में ऐसी प्रक्रियाएँ हैं कि भाषा की 40 मिनट की कक्षा में पढ़ने के अतिरिक्त बच्चों को बाल साहित्य से गुज़रने, पढ़ने के अलग से मौक़े मिलते हैं, क्या कक्षा में ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जिनमें खेल के दौरान गणित की कुछ अवधारणाएँ बच्चे सीख रहे होते हैं या कुछ इस तरह की प्रक्रियाएँ खेल के समय के दौरान शिक्षक बच्चों के साथ इन्वॉल्व होकर करवाते हैं।

रजनी : मैं कुछ बातों को रेखांकित करना चाहूँगी।

पिछले एक-दो साल का दौर बड़ा ही डरावना और दर्दनाक था। बच्चे घर में बन्द थे और एक दूसरे से बातचीत करने, बाहर जाने

की मनाही थी तो दोस्तों के साथ तो नहीं खेल पाते थे। शहरों में हालात और भी ज़्यादा ख़राब थे। अब बच्चे स्कूल में आए हैं तो पढ़ने की भी चिन्ता है और स्वास्थ्य की भी, लेकिन यह ज़रूरी है कि स्कूल में आते ही बच्चों पर दबाव न डालें कि उन्हें यह सीखना ही है। यह आग्रह रहता है कि दिए गए समय में बच्चे सीख ही जाएँ। एक तरफ़ कहते हैं कि बच्चों पर विश्वास करना चाहिए, बच्चों में बहुत सारा पूर्वज्ञान होता है, बच्चे बहुत चीज़ें सीखना चाहते हैं। लेकिन जब बच्चे कक्षा में आते हैं और एक सिस्टम में आने लगते हैं तो हमारा यह विश्वास कमज़ोर होने लगता है और कहीं-न-कहीं हम इस तरह बढ़ जाते हैं कि नहीं सीखेंगे तो इसे कैसे सिखाएँ। अभी के इस दौर में यह विश्वास हमें और ज़्यादा करने की ज़रूरत है कि वे सीखेंगे और हमें उनको समय देने की ज़रूरत है।

शिक्षा एक सामाजिक मानवीय प्रक्रिया है, शिक्षा में यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि बच्चे का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध कैसा हो, अपने शिक्षकों के साथ कैसा हो, शिक्षकों का अन्य शिक्षकों के साथ सम्बन्ध कैसा हो ? यह सम्बन्ध जितना सहज और स्वाभाविक होगा, उतनी ही सीखने–सिखाने की प्रक्रिया भी सहज और स्वाभाविक होगी।

शिक्षा एक सामाजिक मानवीय प्रक्रिया है, शिक्षा में यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि बच्चे का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध कैसा हो, अपने शिक्षकों के साथ कैसा हो, शिक्षकों का अन्य शिक्षकों के साथ सम्बन्ध कैसा हो? यह सम्बन्ध जितना सहज और स्वाभाविक होगा, उतनी ही सीखने-सिखाने की प्रक्रिया भी सहज और स्वाभाविक होगी। हमारे संविधान में भी सहभागिता और सहकार की बातें कही गई हैं तो इसलिए क्योंकि हम इस तरह के समाज में रहते हैं। ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि हमें एक ऐसा समाज चाहिए जिसके लोग एक दूसरे के साथ रह सकें। साथ रहने के लिए एक दूसरे की बात को सुनना, समझना और दूसरों को अपनी बात कहने के लिए समय देना, बीच में नहीं बोलना, ये सारी चीज़ें ज़रूरी हैं, इसी को देखते हुए हम समूह में काम करने की बात करते हैं। शुरुआती स्तर पर ही बच्चों के साथ में करें तो आगे चलकर काम आसान होता जाता है। क्योंकि बच्चे जैसे-जैसे बड़े होंगे, कक्षा 4 से 5 में आने लग जाते हैं तो फिर हमको समझ में आने लग जाता है कि हमें किस तरह से समूह में रहना चाहिए और ये जो हमारा समाज है जिससे बच्चे आ रहे हैं, उसपर भी निर्भर बच्चे किस तरह के समूह में रहना चाहते हैं तो इसीलिए आगे बढ़ते-बढ़ते समूह बनाना थोड़ा पेचीदा हो जाता है तो ये चुनौतियाँ साथ में रहती हैं। आप सभी साथी जो इस संवाद में जुड़े उनको धन्यवाद और हमारे साथी जिन्होंने अपनी बातें रखीं, उनको भी धन्यवाद।